भाद्र शुक्ल १, मंगलवार, दिनांक - २३-१-१९६०
ऋषभजिन स्तोत्र, गाथा - १२ से १५, प्रवचन-५

इस पद्मनन्दि पंचविंशति में ऋषभदेव भगवान का स्तोत्र है। उसकी यह व्याख्या चलती है। सवेरे आत्मद्रव्य में शक्तियों की भक्ति की व्याख्या चलती है। अर्थात्? इस आत्मतत्त्व में जो सामर्थ्य और ताकत है, ऐसी ताकत का धारक आत्मा की भक्ति अर्थात् श्रद्धा-ज्ञान करना, उसे आत्मा की शक्ति की भक्ति कही जाती है।

अभी व्यवहार के लक्ष्य से ऋषभदेव भगवान परमात्मा की भक्ति, शक्तिवान की भक्ति की दृष्टि की भूमिका में ऋषभदेव भगवान की भक्ति कैसी होती है, यह मुनिराज स्वयं वर्णन कर रहे हैं। कहो, नरभेरामभाई! यह मुनि भी भक्ति-पूजा करते हैं, हों! समझ में आया? जंगल में दिगम्बर मुनि थे। छठवें गुणस्थान में, स्वयं छठवीं-सातवीं गुणस्थान की भूमिका में झूलनेवाले, उन्हें भगवान परमात्मा के प्रति भक्ति का उल्लास आने पर यह स्तोत्र स्वयं रच गया है। उसमें यहाँ ग्यारह गाथा चली। ग्यारहवीं आयी न?

क्या कहा ग्यारहवीं में? हे परमात्मा! आपका जब मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक हुआ, तब पानी इतना अधिक था कि पानी का प्रपात पड़ा और पानी उछला, उसके कारण देव आकाश में व्याप्त हो गये।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने ज्ञानजलस्वरूप में एकाग्र होने पर इतनी ज्ञान की दशा प्रगट होती है कि वह लोकालोक को अथवा श्रुतज्ञान के प्रमाण में उसे परोक्ष जो जानने का है, वह सब ज्ञात हो जाता है। कहो, केवलचन्दभाई! देखो! यह भक्ति चलती है।

अब बारहवीं गाथा।

गाथा १२

अब, बादल में भी अलंकार करके स्तुति करते हैं।

णाह तुम जम्म ण्हाणे हरिणो मेरुस्सि पणच्चमाणस्स।
वेल्लिरभुवाहिभग्गा तह अज्जवि भंगुरा मेहा।।१२।।

अर्थ – हे प्रभो! आपके जन्म-स्नान के समय जिस समय अपनी लम्बी भुजाओं को फैलाकर इन्द्र ने नृत्य किया था, उन लम्बी भुजाओं से जो मेघ भग्न हुए थे, वे मेघ इस समय भी क्षणभंगुर ही हैं।

भावार्थ – ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि जो मेघ क्षणभंगुर मालूम पड़ते हैं, उनकी क्षणभंगुरता का यही कारण है कि जिस समय भगवान का जन्म-स्नान मेरुपर्वत पर हुआ था, उस समय उस मेरुपर्वत के ऊपर आनन्द में आकर अपनी भुजाओं को फैलाकर इन्द्र ने भगवान के सामने नृत्य किया था और उस समय फैली हुई भुजाओं से मेघ भग्न हुए थे; इसी कारण अब भी मेघों में भंगुरता है, उनकी भंगुरता का दूसरा कोई भी कारण नहीं है।

गाथा - १२ पर प्रवचन

णाह तुम जम्मण्हाणे हरिणो मेरुस्सि पणच्चमाणस्स।
वेल्लिरभुवाहिभग्गा तह अज्जवि भंगुरा मेहा।।१२।।

आहाहा! हे प्रभु! ...ऋषभदेव भगवान तो बहुत कोड़ाकोड़ी सागरोपम के अन्तराल में हो गये हैं, परन्तु समीप में वर्तते हों, ऐसे भक्ति करते हैं। दुनिया में राग होता है। पति परदेश में हो और पत्नी देश में हो तो नहीं कहते कि मेरा जीव वहाँ लगा है? देह— हड्डियाँ यहाँ पड़ी परन्तु जीव तो वहाँ लगा है। केवलचन्दभाई! ऐसा कहा जाता है या नहीं? पत्र में लिखते हैं। बहुत राग होवे न, (इसलिए) पत्र में लिखते हैं कि देह भिन्न परन्तु मेरा जीव तो वहाँ लगा है। इसी प्रकार आत्मा एक समय में शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति, ऐसी जिसे विकार और संयोग के निमित्त से रुचि हटकर आत्मा के प्रति प्रेम जागृत

हुआ है, रुचि जगी है, दृष्टि-श्रद्धा जगी है, उसे परमात्मा के विरह में भी मानो परमात्मा नजदीक है, समीप है, इस प्रकार उनकी भक्ति कर रहे हैं। कहो, समझ में आया?

लोग ऐसा कहे वापस यह और क्या? एक ओर निश्चयवस्तु ऐसी... नेमिदासभाई! और यह मन्दिर और यह पूजा और लाखों रुपये का खर्चा! मुम्बई में तो बड़ा चार लाख का तो मन्दिर (बनाया है) और दो लाख सत्तानवें हजार की आमदनी, एक लाख नब्बे हजार का खर्च। यह बड़ी धूमधाम हाथी और यह... ओहोहो! सौ वर्ष में (ऐसा हुआ नहीं)। यह क्या है? कितने ही तर्क करते हैं, ऐई! नरभेदासभाई! तर्क करे, परन्तु उसे भान नहीं कि संसार में भी जहाँ जिसे प्रेम और प्रीति है, वहाँ उछालता है। पुत्र के विवाह के समय नहीं उछालता। समझ में आया?

मुमुक्षु : दिल्ली तक गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दिल्ली तक गये। यह और ठीक याद आया। दिल्ली बारात लेकर गये। कभी देखा नहीं था दिल्ली। वहाँ दिल्ली विवाह करने गये।

मुमुक्षु : हाँ, परन्तु ले गये थे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भाई वह कहीं स्वयं गये बिना, वह कहीं ऐसे नजरें मिलाने देखे बिना कुछ सन्तोष होगा? स्वयं वहाँ जाना चाहिए न।

यहाँ कहते हैं कि यह जाति चैतन्य प्रभु, ओहो! परमानन्द की शुद्ध चैतन्यमूर्ति ऐसे निर्विकार परमात्मा, वैसा आत्मा, उसकी प्रतीति और श्रद्धा हुई, उसे निर्विकारी परमात्मा जिसे पूर्ण दशा प्रगट हुई उसके प्रति भक्ति और प्रेम और राग आये बिना नहीं रहता तथा उस प्रकार का राग न आवे और ऐसा कहे कि हमें भगवान के प्रति राग नहीं आता, वह मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है। उसे नहीं है आत्मा के साधकस्वभाव का भान और साधक में भक्ति का प्रेम कैसा होता है, इसकी भी उसे खबर नहीं है।

यहाँ आचार्य महाराज बात अपने हृदय की भी कर रहे हैं और ऐसे भक्ति को भी मिला रहे हैं। **हे प्रभो! आपके जन्म-स्नान के समय जिस समय अपनी लम्बी भुजाओं को फैलाकर...** जन्मस्नान (के समय) मेरुपर्वत पर इन्द्र, अभी एकावतारी, हों! जिसे एक अन्तिम देह है। वह इन्द्र और इन्द्राणी पहले स्वर्ग के उनको-दोनों को अन्तिम देह

है। वहाँ से निकलकर मनुष्यपना प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जानेवाले हैं। ऐसे शकेन्द्र क्षायिक समकिती एकभवतारी, वह जब जन्माभिषेक में जाता है, वहाँ प्रभु की भक्ति के प्रति इतना आनन्द आ जाता है। अभी प्रभु तो बालक है, उनके प्रति यहाँ आत्मा साधक स्वभाव से जागृत हुआ, पूर्ण साध्य हुआ उसे... पूर्ण साध्य उन्हें होगा अभी। अभी तो उन्हें कहाँ हुआ है? होगा। स्वयं चौथे गुणस्थान में है और यह भी चौथे में है। तो भी इतनी भक्ति भगवान के प्रति आयी कि महाराज! प्रभु! आपका जन्म हुआ, तब इन्द्र ने हाथ ऐसे फैलाये। ऐसा विस्तार किया, तब बादलों की जो घटा थी, बादलों की घटा अखण्ड एक थी, (इन्द्र ने) ऐसे हाथ किये, वहाँ बादल खण्ड-खण्ड हो गये और बादल खण्ड-खण्ड में बादल जो कुछ क्षणभंगुरता दिखती है, वह क्षणभंगुरता प्रभु! उस दिन की है। समझ में आया? वे बादल कभी इकट्ठे नहीं होंगे। ये टुकड़े हुए, सो टुकड़े हुए। क्षणभंगुर बादल हैं, क्षणिक हैं, वे सब समाप्त हो जाएँगे।

इसी प्रकार भगवान! हमारा आत्मा आपका स्वरूप जो है, वैसा हमारा है - ऐसा हमें भान हुआ, (वहाँ) अनादि के कर्म के बादल अखण्ड (थे), जिसमें खण्ड पड़े बिना थे ऐसा जहाँ... किया कि अरे! चिदानन्द रागरहित है, ऐसी पहिचान और भान हुए (तो) वह खण्ड-खण्ड (होकर) बादल टूट गये। समझ में आया? समझ में आता है? नेमीचन्दजी! भाषा तो भाई! हमारी गुजराती है न। ऐसे हाथ फैलाता है न, नाचता है। आनन्द हुआ तो भगवान को देखकर नाचता है। यहाँ तो अभी शर्म आवे। समझ में आया? ....चन्दभाई! बराबर है, लो। यहाँ तो अभी शर्म आवे। कारण कि सोंसरवूं निकलना और यह भगवान के दर्शन करना और यह पीतवस्त्र पहना हो तो उघाड़ा पड़ जाए। केवलचन्दभाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मूर्ति मानते होंगे? इस मूर्ति की पूजा? अमुक यह?

इन्द्र, जिसे एकावतारीपना है, ऊपर से उतर कर माता के पास जब (प्रभु) जन्मते हैं, तब इन्द्राणी जाकर बालक को लाती है, हाथ में वहाँ ले जाती है, उनका स्नान करते हुए इतना आनन्द उसे आ जाता है (कि उसे) भक्ति का उछाला (आता है)। है तो वह शुभभाव परन्तु वह भक्ति आये बिना रहती नहीं। समझ में आया? श्रीपालजी! भक्ति।

मेरुपर्वत पर ले गये। कहते हैं कि भगवान! वे बादल खण्ड-खण्ड क्षणभंगुर हैं, हों! क्षणभंगुर।

इसी प्रकार हमारे भी थोड़े कर्म बाकी रहे हैं और हमारा नित्य ध्रुव चैतन्यमूर्ति हमारी दृष्टि और श्रद्धा में हमने लिया है। अब कर्म बाकी रहे, वे क्षणभंगुर हैं। कहो, समझ में आया? यह ऐसा कहते हैं इसमें। क्या कहा? भगवानजीभाई! आहाहा! अरे! भगवान को पहिचाने और भगवान की भेंट हो, उसे कर्म के बादल खण्ड-खण्ड न हो और रहे हुए क्षणभंगुर और अनित्य न हो तो उन भगवान की भेंट हुई नहीं। भगवान को देखा नहीं, भगवान को देखा नहीं, भगवान के दर्शन किये नहीं। कहा था न तब (संवत्) १९७२ के वर्ष में, तब सम्प्रदाय में हमारे बात चली थी। ७२ के वर्ष। ४४ वर्ष हुए। ४४ वर्ष।

वे कहें, भगवान ने-केवलज्ञानी ने देखा होगा, तत्प्रमाण भव होंगे। भगवान ने जिस प्रकार देखा तत्प्रमाण भव में अपना आत्मपुरुषार्थ कुछ नहीं कर सकते। नववाड से ब्रह्मचर्य पालन करो, नौ कोटि से संथारा करो। संथारा समझते हो? समाधिमरण। सल्लेखना, नौ-नौ प्रकार से सल्लेखना करो, नौ-नौ वाड से ब्रह्मचर्य (पालन करो) नौ वाड होती है न? ब्रह्मचर्य पालन की। नौ वाड से ब्रह्मचर्य पालन करो परन्तु भव नहीं घटेंगे। ऐसी बात १९७२ में चली थी। भव नहीं घटे तो क्या बोलते हो? भगवान के नाम से तुमन क्या उड़ाया यह। आगम की वाणी ऐसी नहीं हो सकती। सर्वज्ञ परमात्मा जिसके हृदय में बैठे... ओहो! भगवान पूर्णानन्द की प्राप्ति की पर्याय की... उसकी वाणी में भी ऐसी वाणी नहीं होती कि तुझे भव नहीं घटेंगे। वह तो कहे, हमें तूने पहचाना, हमारे द्रव्य-गुण और पर्याय... ऐसी तो यहाँ कहाँ थी द्रव्य-गुण-पर्याय की वहाँ। कहो, समझ में आया? परन्तु उन्हें पहचाना और केवलज्ञान जिसे अन्दर जँचा, भगवान की वाणी में भव के नाश की वाणी है। भगवान की वाणी जिसे जँचे और भगवान की जिसे रुचि हो, उसके तो भव का नाश होता है। उन भगवान के ज्ञान में ऐसा देखा है। ऐसा तुम्हारा लप करते हो, ऐसा देखा नहीं। तुम्हें अनन्त भव देखे होंगे, कहा। म्या बोलते हो यह? ऐई! चन्दुभाई! यह तो ७२ के फाल्गुन शुक्ल तेरह की बात है। फाल्गुन शुक्ल तेरह, (संवत्) १९७२। ४४ वर्ष हुए। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! ओहोहो! पूर्णानन्द की प्राप्ति! ऐसा हमें विकल्प आया, आपके प्रति भक्ति का और हमारा ज्ञान भी स्व को जानते हुए आपको जानने के लिये घुल रहा है, ऐसी स्थिति में कर्म के टुकड़े हो गये। निधत और निकाचित और धूल चाहे जो बँधी हो, वह थोड़े बाकी रहे, प्रभु! वे क्षणभंगुर हैं। समझ में आया? क्षणभंगुर हैं, अनित्य हैं, नाश होने को तैयार हो रहे हैं। वे अब रहनेवाले नहीं हैं।

उन लम्बी भुजाओं से जो मेघ भग्न हुए थे, वे मेघ इस समय भी क्षणभंगुर ही हैं। क्षणभंगुर दिखते हैं। ओहो! जहाँ देखो वहाँ बादल ही देखते हुए यह कहा। भगवान को सर्वार्थसिद्धि में देखा तो कहे प्रभु! आपके कारण वहाँ शोभा (थी)। नाभिराजा के घर आये तो पृथ्वी वसुमति आपके कारण (हुई)। मरुदेवी माता के गर्भ में आयी, इसलिए दूसरी स्त्रियों की अपेक्षा धन्य हो गयी और ये बादल जहाँ जन्माभिषेक करते हुए.... हो गया अन्दर, टूट गये, टुकड़े हो गये।

ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि जो मेघ क्षणभंगुर मालूम पड़ते हैं, उनकी क्षणभंगुरता का यही कारण है कि... देखो! है या नहीं? लिखा है, देखो! गजाधरलाल है न? कौन है ये? **जिस समय भगवान का जन्म-स्नान मेरुपर्वत पर हुआ था, उस समय आनन्द में आकर...** यह दुनिया में भी नहीं उस विवाह-विवाह प्रसंग करे तो कुछ पहरानवी करे, अमुक करे, तब आनन्द में नहीं आते? देखा है? पहले यह काठिया, अब तो सब घट गया। पहले काठियों में ऐसा था। यह काठिया होते हैं न काठी? काठी गरासिया। यह लोहे के चारण हों चारण। उनके, समझे न? क्या कहलाता है। यह सब बारोठ जैसे। ....विवाह हो उसके, तब ऐसे घोड़ियाँ पाँच-पाँच हजार गहने पहनाई हुई घोड़ियाँ उसे देते हैं। एक-दूसरे समधी चढ़े। कन्या का पिता और यह। चढ़े-चढ़े एक-दूसरे को। गये हों न वहाँ। यह कहे कि यह घोड़ी देता हूँ। दूसरा कहे, घोड़ी नहीं हजार गहना दे दूँ। दूसरा कहे...

मुमुक्षु : गाँव दे दूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाँव तो कहाँ था उसके पास।

मुमुक्षु : गाँव भी दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाँव भी दे, अधिक गाँव हो तो। यह तो गाँव तो मैंने साधारण लिया। उसे और गप्प मारना हो, कौन जाने? कहो, समझ में आया? कहाँ देना है और लेना है, ऐसा कहे। परन्तु यह तो सुना है भाई, हाँ! ऐसे बैठे देहरी पर और विवाह का प्रसंग और जब विदाई का अवसर हो तब दोनों चढ़े... उसके बारोठ को देने के लिये। पाँच हजार का क्या घोड़े का कहलाता है... सोने की मोहर पाँच हजार की और घोड़ी। वह चारण भी उस समय ऐसा-ऐसा करे कि ऐसी खुशहाली बतावे, ऐसी बतावे, वाह रे वाह! विक्रमभोज राजा। कहते हैं कि राग का मारा उस समय भी इस प्रकार से उसकी प्रशंसा करता है।

यहाँ तो तीन लोक के नाथ को ऐसे नजर से देखते हुए सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्तदेव मानो समवसरण में विराजते हैं। प्रभु! ओहोहो! आनन्द में आकर। क्या कहा यह? देखो! **आनन्द में आकर अपनी भुजाओं को फैलाकर इन्द्र ने भगवान के सामने नृत्य किया था...** किसने? इन्द्र एकावतारी घुँघरु बाँधकर नाचता है। बालक होगा? तो क्या है? बालक ही है। शरीर की क्रिया तो शरीर के कारण से होती है। भक्ति का भाव उछला है। भगवान की प्रतिमा के निकट... अरे! जहाँ नन्दीश्वर द्वीप है या नहीं? आठवाँ द्वीप है नन्दीश्वर है। जहाँ शाश्वत् मणिरत्न की प्रतिमाएँ भगवान की शाश्वत् है। वहाँ बारह महीने में तीन अष्टाह्निका आती है—कार्तिक शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा; फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा; आषाढ़ शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा। आठ-आठ दिन तक इन्द्र वहाँ जाते हैं और बालक की भाँति भगवान के (सन्मुख) ऐसे हाथ में करताल लेकर भक्ति करे, भक्ति। कहो, समझ में आया? जैसे पिता के निकट पुत्र घनघनाहट नहीं करता? राग में आवे तब पिता भी फिर गलगलिया जैसी भाषा नहीं करता? हे बापू! हे बापू! हे भाई! ऐसा नहीं करते। नरभेरामभाई!

इसी प्रकार भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव आनन्दमूर्ति उपशमरस के पिण्ड, अकषायरस को पाकर ढ़ेर पुंज पड़े देह में, उस देह के परमाणु और निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध थोड़ा अघातिकर्म है तो रहा है। ऐसे अरिहन्त को लक्ष्य कर कहते हैं कि हे प्रभु! आप तो सर्वज्ञ तो बाद में होओगे, परन्तु जब यहाँ थे और इन्द्रों को आनन्द आया (कि) नृत्य (करते हुए) ऐसे नाचे। पैर नाचे। कहो, समझ में आया? यह कहीं भक्ति छिपी रहती होगी?

उसमें नहीं आता? 'चंचल नारी का नैन छुपे नहीं, दाता छुपे नहीं घर मांगन आया। भाग्य छुपे नहीं भभूत लगाया, चन्द्र छुपे नहीं बादल छाया।' बादल आ जायें तो चन्द्र का ख्याल नहीं आता? चन्द्र का ख्याल आता है या नहीं? कि चन्द्र है। भले बादल आये। इसी प्रकार भभूत लगाने से भाग्य नहीं छिपता। साधु हो जाए और भभूत लगावे, इससे यह पुण्यवन्त प्राणी है, यह कहीं ढँका रहेगा? उसकी पुण्यवन्तता, उसका प्रताप, उसकी शक्ति भी ढँकी नहीं रहेगी। 'चंचल नारी का नैन छुपे नहीं।' चपल स्त्री हो, उसकी आँख गति किया करती है। और 'दाता छुपे नहीं, घर माँगन आया।' वह घर में माँगने आया और दाता कहे, तुझे क्या दूँ? चार आना दूँ।

एक व्यक्ति कहता था, भाई! आठ महीने तक उसके पैर दबाये सेवक ने। यह तो सब बहुत है न, फिर उसका साला उससे पूछता है कि तेरे इस सेवक को आठ आने दूँगा? यह तो बहुत वर्ष की बात है, हों! ५०-६० वर्ष की बात है। समझे न? वह ससुराल गया था, नवविवाहित। अब नयी को लड़का कुछ नहीं, पुरानी को नहीं था। कुछ नहीं था, उसके ससुराल गये और वह सेवक रोज (पैर दबावे)। सेठ का दामाद है इसलिए (सेवक पैर दबावे)। फिर कितने ही वर्ष के बाद कहे, अपने इसे आठ आना और श्रीफल देंगे। उसका साला समझ गया, कहे, इतना बहुत है, हों! वह सेवक कहे कि यह क्या? महीना (हुआ) तू तो सेठ है, लड़का नहीं। हमारी यहाँ लड़की है, वहाँ तेरे घर में उसके लड़का नहीं और महीने दिन तक रात्रि में तेरे पैर दबाये। वाणन्द दबावे न वह आकर? प्रसन्न हो गया तो आठ आना। फिर उसके साले ने ऐसा भी कहा कि कुछ न दो तो कोई आवश्यकता नहीं। यह तो अपना सेवक है। समझे न? समझ गया कि यह मुफ्त की इज्जत गँवाता है।

इसी प्रकार जब भगवान की भक्ति उछले, वह कुछ ढँका रहता होगा? ...हे भगवान! ऐसा करना। प्रभु! यह... ऐसा होता है और ऐसा होता है। अमुक होता है। अरे! भगवान की पूजा, भक्ति में ऐसा आनन्द और उत्साह की भक्ति आये बिना नहीं रहती, तथापि धर्मी जानता है कि वह शुभभाव है। शुभभाव पुण्यभाव पाप से बचने के लिये आता है। धर्म नहीं है, मोक्ष नहीं है, मोक्ष का कारण नहीं है। आरोप से कहते हैं कि हे भगवान! आपकी भक्ति हमें मोक्ष का कारण होती है। कहो, समझ में आया?

नृत्य किया था और उस समय फैली हुई भुजाओं से मेघ भग्न हुए थे; इसी कारण अब भी मेघों में क्षणभंगुरता है,... इस कारण से, हों! उसकी क्षणभंगुरता का कारण दूसरा कोई नहीं है। इसी प्रकार परमात्मा की भक्ति (करता है)। जैसे परमात्मा द्रव्य से शक्तिवान, शक्ति और पर्याय से है, उनकी जिसे अन्तर में महिमा स्वद्रव्य के सन्मुख होकर हुई, उसकी कर्म की अवस्था, क्षणभंगुरता अभी भी दिखती है। उस काल में हुई, वह अभी कहते हैं कि हमारे साधक जीव को कर्म चले जाते हैं। ध्रुवता के आश्रय से स्थिरता प्रगट होती जाती है। यह उसे निश्चय और भगवान के प्रति विकल्प, उसे व्यवहारभक्ति कहते हैं।

तेरहवीं (गाथा)

गाथा १३

अब, तेरहवें श्लोक में स्तुतिकार कहते हैं कि–

जाण बहुएहिं वित्ती जाया कप्पदुमेहिं तेहिं विणा।
एक्केणवि ताण तए पयाण परिकप्पिया णाह।।१३।।

अर्थ – हे नाथ! हे प्रभो! जिन प्रजाजनों की आजीविका बहुत से कल्पवृक्षों से होती थी, उन कल्पवृक्षों के अभाव में उन प्रजाजनों की आजीविका आप अकेले ने ही की।

भावार्थ – जब तक ऋषभदेव भगवान का जन्म, पृथ्वी–तल पर नहीं हुआ था, उस समय तक इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में भोगभूमि की रचना थी। जब उनको जिस बात की आवश्यकता होती थी, तब उस वस्तु की प्राप्ति के लिए उनको प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। वे सीधे कल्पवृक्षों के पास चले जाते थे और अभिलाषित वस्तु की पूर्ति उन कल्पवृक्षों के सामने कहनेमात्र से ही हो जाती थी। उस समय दश प्रकार के कल्पवृक्ष मौजूद थे तथा अलग–अलग सामग्री देकर जीवों को आनन्द देते थे, किन्तु जिस समय भगवान आदिनाथ का जन्म हुआ, उस समय जम्बूद्वीप के इस भरतक्षेत्र में कर्मभूमि की रचना हो गयी, भोगभूमि की रचना न

रही, कल्पवृक्ष भी नष्ट हो गये; उस समय जीव भूखे मरने लगे और उनको अपनी आजीविका की चिन्ता हो पड़ी, तब उस समय भगवान आदीश्वर ने असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि का उपदेश दिया और भी नाना प्रकार के लौकिक उपदेश दिये; जिससे उनको फिर से वैसा ही सुख मालूम होने लगा; इसलिए कर्मभूमि की आदि में भगवान आदिनाथ ने ही कल्पवृक्षों का काम किया था। इसी बात को ध्यान में रखकर ग्रन्थकार, भगवान की स्तुति करते हैं कि हे प्रभो! जिन प्रजाजनों की आजीविका, भोगभूमि की रचना के समय बहुत से कल्पवृक्षों से हुई थी, वही आजीविका कर्मभूमि के समय कल्पवृक्षों के बिना आप अकेले ने ही की; इसलिए हे जिनेन्द्र! आप कल्पवृक्षों में भी उत्तम कल्पवृक्ष हैं।

गाथा - १३ पर प्रवचन

जाण बहुएहिं वित्ती जाया कप्पदुमेहिं तेहिं विणा।
एक्केणवि ताण तए पयाण परिकप्पिया णाह।।१३।।

हे **नाथ!** हे प्रभु! देखो, कहते हैं, **जिन प्रजाजनों की आजीविका बहुत से कल्पवृक्षों से होती थी,...** अब लाये यहाँ। जन्माभिषेक करने के बाद राजा हुए न? तब उस समय ऋषभदेव भगवान के समय में पहले कलपवृक्षों से जीवन था। कोई पकावे या रोटियाँ बनावे, चूल्हा और ऐसा कुछ नहीं था। दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे ऐसा ही उसका-पृथ्वी का और उस युग का ऐसा स्वभाव कि मनुष्य हों, वे बहिन और भाई ही हों। वे ही पति-पत्नी हों। दो ही हों और दो हों वापस और उन कल्पवृक्ष से ही उनका जीवन था।

कहते हैं, प्रभु! आप जब पृथ्वी पर आये, तब उस काल में कल्पवृक्षों की जो दूसरे जीवों को आजीविका होती थी, उन कल्पवृक्षों के अभाव में अकेले आप ने ही उन प्रजाओं की आजीविका की है। भगवान को ऐसा विकल्प आया था, नीति से बताया था। समझ में आया? कि देख भाई! जगत के नियम में जहाँ प्रजा का ऐसा प्रसंग आवे तो कुलकर या तीर्थंकर का जीव इस प्रकार से जन्मे और उसे ऐसा भाव आवे कि इस

प्रजा को आजीविका कैसे करना, इसकी खबर नहीं। कल्पवृक्ष समाप्त हो गये। भाई! तुम ऐसा करो, इसका ऐसा करो, तवा ऐसा करो, अनाज ऐसे पकाओ, यह गन्ना लम्बा-लम्बा है, उसे ऐसे करो, उसके टुकड़े करो, उसमें से रस निकलेगा। उसमें से ऐसे करो तो उसमें से गुड़ होगा, इसमें से शक्कर होगी। ऐसा सब (सिखलाया)। भगवानजीभाई!

तब वे क्या कहते हैं? देखो! भगवान ने भी ऐसा जगत के उद्धार के लिये किया। सुन न! उस समय ऐसी स्थिति हो इसलिए। सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर हैं, तीन ज्ञान के धनी हैं और उनकी पदवी प्रमाण में उन्हें ऐसा राग आये बिना नहीं रहता। प्रभु! कल्पवृक्ष के अभाव में, कल्पवृक्ष नहीं थे, तब आपने अकेले ने दस कल्पवृक्षों का निर्वहन किया था जो कल्पवृक्ष से आजीविका होती थी (वह) इनसे हुई। समझ में आया? इसी प्रकार अनादि काल का आत्मा पुण्य और पाप के फल से जो निभ रहा था, और जहाँ दृष्टि आत्मा की कल्पवृक्ष में—चैतन्यमूर्ति (में पड़ी तो) इस एक से जीवन का पूरा पड़ा। भगवान आत्मा ज्ञातादृष्टा के कन्दस्वरूप है, वही मेरी चीज़ है। उसके कारण से सुख, शान्ति, वीर्य जो गिने, वह उस आत्मा में से प्राप्त होता है और कल्पवृक्ष के अभाव में आपने पूरा किया। कहो, समझ में आया? कर सके होंगे? व्यवहार के कथन ऐसे आते हैं। समझ में आया? यह आया है न, देखो न!

जब तक ऋषभदेव भगवान का जन्म, पृथ्वी-तल पर नहीं हुआ था, उस समय तक इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में भोगभूमि की रचना थी और उस भोगभूमि की स्थिति में सब जीव भोगविलासी थे। भोग अर्थात् कुछ करना और पकाना नहीं। उस प्रकार की खाने-पीने की क्रिया होती थी। क्योंकि वे जुगलिया उत्पन्न होते थे। जुगल अर्थात् दो। और उन सबको **जब उनको जिस बात की आवश्यकता होती थी,...** जिस बात की आवश्यकता, यह तो बात की है, परन्तु वह तो आवश्यकता पड़ती हो, उतने प्रकार के कल्पवृक्ष थे। उनने कहाँ वहाँ देखे हैं दूसरे भुजिया और अमुक और अमुक। खाने को चाहिए तो अन्न मिले, पीने को चाहिए तो रस मिले, दीपक मिले, मकान ही ऐसे उगे कि महल जैसे मकान हों। सोने और बैठने को वह मिले। ऐसे दस प्रकार की चीज़ें वहाँ थी।

उस समय ... जिस बात की आवश्यकता होती थी, तब उस वस्तु की

प्राप्ति के लिए उनको प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। वे सीधे कल्पवृक्षों के पास चले जाते थे और अभिलाषित वस्तु की पूर्ति उन कल्पवृक्षों के सामने कहनेमात्र से ही हो जाती थी। कहनेमात्र से हुई। यह तो कहनेमात्र का अर्थ कि वह वहाँ थी। होवे ही तैयार। खाने की-पीने की चीज़ें आदि वस्त्रादि। जैसे यह केल होती है न? केला। उसका पत्ता कितना चौड़ा है! तो एक वृक्ष ऐसा ही हो कोमल, पतला रेशम जैसा, उसके पत्ते निकलें, इसलिए वह वस्त्र में काम आवे। ऐसी चीज़ें (प्राप्त हों ऐसे) दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे। भगवान! जब उनका अभाव हुआ, तब आपने अकेले ने उन सबका पूरा किया। कहो, समझ में आया?

कल्पवृक्ष मौजूद थे तथा अलग-अलग सामग्री देकर जीवों को आनन्द देते थे... देते थे अर्थात् वह तो थी वहाँ। और उसे जो कल्पना थी कि मुझे भूख लगी है, प्यास लगी है, (वह मिलने से) सन्तोष हो जाए। वह तो खाते इतना। तीन कोस के लम्बे, खावे बोर के जितनी गुठली का खुराक, वह भी वापस तीन दिन के बाद (खावे)। वह कहीं खुराक अधिक हो तो शरीर अच्छा रहे और थोड़ा हो तो शिथिल पड़े, ऐसा है नहीं। है न अभी बहुत लोगों को इस प्रकार की (मान्यता कि) खूब खाओ पेट भरो तो शरीर अच्छा रहेगा। ऐसा नहीं है। शरीर में वे परमाणु खुराक कैसे परिणमती है, इस आधार से वहाँ शक्ति का, शरीर की शक्ति का, हों! आत्मा की शक्ति तो कहाँ वहाँ उसे उसमें थी। यहाँ तो फिर अधिक खाओ। लड्डू खाओ, घी खाओ, सालमपाक उड़ाओ, लहसणिया उड़ाओ। मानो क्या कहलाये वह लड्डू कहते हैं जामनगर के उड़दिया। लो, यह और... शरीर पुष्ट हो। सालमपाक खाते हैं न, सालमपाक। मूसलीपाक। होता है या नहीं सर्दी के दिनों में (खावें तो) शरीर पुष्ट रहे। धूल में भी नहीं रहता। वह तो साता का उदय हो तो जैसे यह पुद्गल परिणमे ऐसी शक्ति दिखती है।

यहाँ तो तीन कोस के जुगलिया एक बोर जितना आहार ले, प्रभु! परन्तु वह भी घट गया। आहार के कारण, वे भी घट गये। तब आपने सबका पूरा पाड़ा था, यह बात करते हैं। अन्न देते थे। **किन्तु जिस समय भगवान आदिनाथ का जन्म हुआ, उस समय जम्बूद्वीप के इस भरतक्षेत्र में कर्मभूमि की रचना हो गयी, भोगभूमि की रचना न रही, कल्पवृक्ष भी नष्ट हो गये; उस समय जीव भूखे मरने लगे और**

उनको अपनी आजीविका की चिन्ता हो पड़ी,... आये भगवान के (पास) प्रभु! हमें भूख लगी है, हों! यह कैसे करना, हमें खबर नहीं पड़ती, क्या करें यह? अरे! भाईयों! यह अनाज लम्बा-लम्बा उगा है, यह दाना है। यह दाना है। तब क्या करना? इस दाने को लाओ। एक पत्थर लावे। ये बहत्तर कला के ज्ञाता थे। पत्थर की बनावे चक्की, उन्हें बतावे कि देखो! इसके नीचे दलना। इसमें से आटा निकालना। तब पकाना किस प्रकार? लो, यह मिट्टी। इसमें पानी डालकर बनावे पिण्ड। हाथी होता है न हाथी? उसके कुम्भ स्थल पर ऐसा करे, सुखावे... डालना। देखो! उसमें रोटी (पकावे)। रोटी समझे रोटी? रोटी इसमें पकावे। ऐसा बताने का राग उस प्रसंग में भगवान के जन्मकाल में ऐसी स्थिति हो, इसलिए ऐसा वहाँ बने बिना नहीं रहता। वाणी वाणी की क्रिया करती है, हों! जड़, जड़ की क्रिया करता है। उसमें आत्मा को कुछ है नहीं।

तब उस समय भगवान आदीश्वर ने असि, मसि, कृषि, वाणिज्य... असि अर्थात् तलवार, मसि अर्थात् लिखना, वाणिज्य-व्यापार, **आदि का उपदेश दिया...** इस प्रकार का उपदेश वाणी का योग था। इससे लोग विवाद करे - भगवान ने उपदेश दिया या नहीं उस समय? अरे! भगवान! तुझे क्रम की खबर नहीं। भगवान! उस वाणी का क्रम जब होता है न, तब ऐसी ही वाणी निकलती है। उसे ऐसा विकल्प होता है, तब विकल्प के कारण से नहीं और विकल्प का भी उसका क्रम है, ऐसे काल में भगवान जन्मे, इसलिए ऐसा ही उन्हें विकल्प आने का योग ही होता है। तब उपदेश दिया न? यह कथन तो आया कि उपदेश दिया। धन्नालालजी! पण्डितजी विवाद करते हैं। भगवान ने आजीविका का उपदेश दिया, इसलिए तुम्हें भी देना (चाहिए)। कौन उपदेश दे? प्रभु! कल नहीं कहा था? उसमें अमृतचन्द्राचार्य ने। कौन बोलता है? प्रभु! यह वाणी कौन बोलता है? शब्दों की शक्ति से यह टीका हो गयी है। हम इसके करनेवाले नहीं हैं। नरभेरामभाई! ओहोहो!

मुमुक्षु : सब उसके कारण से हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा के कारण से वे शब्द परिणम गये हैं। हमें व्याख्याता बनाकर तुम मोह में मत नाचना। हम इस वाणी के कर्ता नहीं हैं। तब यह उपदेश दिया तो वाणी के कर्ता होंगे? कि मैं ऐसा दूँ, ऐसा होगा? उस काल में वाणी का योग ही

भाषा के क्रम में आने का हो, वैसी वाणी आती है और यह जुगलिया दुःखी हैं; इसलिए लाओं मैं इन्हें (उपदेश) दूँ, यह विकल्प आवे वह उनके कारण से भी नहीं आता। तब तो वे जुगलिया कर्ता हुए और इनका विकल्प उनका कार्य हुआ। और विकल्प कर्ता तथा भाषा कार्य, ऐसा भी नहीं हो सकता। भारी सूक्ष्म बात, भाई! राग आया, इसलिए यह उपदेश निकला, ऐसा नहीं है। उपदेश के काल में वाणी का योग हो, तब निकलता है। वाणी का योग न हो तो नहीं निकलता।

भगवान को ६६ दिन तक वाणी बन्द रही। सुना है या नहीं? महावीर भगवान! केवलज्ञान हुआ वैसाख शुक्ल दसमी और वाणी खिरी श्रावण कृष्ण एकम्। अपने (गुजरात तिथि अनुसार) आषाढ़ कृष्ण एकम्, श्रावण कृष्ण एकम्। दो महीने छह दिन तक वाणी का योग ही नहीं था। वाणी कहाँ से निकले? गणधर नहीं आये, इसलिए नहीं निकली—ऐसा लोग भ्रम करते हैं। ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी जगत की दृष्टि। वह तो गणधर का पुण्य, उन्हें सुनने का विकल्प, उन्हें उस प्रकार के जानने का उघाड़ और यहाँ वाणी का निकलना। यहाँ क्या है? सुननेवाले को शुभराग का विकल्प है, उस प्रकार का क्षयोपशम यह सुनने की योग्यतावाला है, वाणी वाणी के काल में निकलती है, विकल्प के काल में विकल्प होता है। उसका कर्ता-हर्ता आत्मा नहीं है। गजब बात, भाई! टीका की तो कहते हैं हमने नहीं। वे तो बड़े पुरुष थे ऐसा ही कहे न! और ऐसा कोई कहता है। भाई! बड़े पुरुष करे सही और इनकार करे।

मुमुक्षु : लघुता बतावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। ऐसा है ही नहीं। लघुता इतनी कि उसका कर्ता ही आत्मा नहीं है। परन्तु उपदेश में ऐसे वाक्य आवे, उन्हें व्यवहारनय से ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने उपदेश दिया। दे कौन? दे कौन? ले कौन?

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा उपदेश दिया। **और भी नाना प्रकार के लौकिक उपदेश दिये;...** उसे कैसे बोलना? कैसे सीखना? समझे न? सब सिखाया। दो लड़कियाँ थीं, उन्हें (ब्राह्मी) लिपि और अंकलिपि आदि सिखायी। **फिर से वैसा ही सुख मालूम होने लगा;...** अर्थात् पहले कल्पवृक्ष के समय जो साधन थे ऐसा ही उन्हें सुख हुआ। —सुख उनकी कल्पना का। **इसलिए कर्मभूमि की आदि में भगवान आदिनाथ ने ही**

कल्पवृक्षों का काम किया था। इसी बात को ध्यान में रखकर ग्रन्थकार, भगवान की स्तुति करते हैं कि हे प्रभो! जिन प्रजाजनों की आजीविका, भोगभूमि की... रचना के समय भोगभूमि की जमीन की रचना से स्थापित की। **बहुत से कल्पवृक्षों से हुई थी, वही आजीविका कर्मभूमि के समय कल्पवृक्षों के बिना आप अकेले ने ही की; इसलिए हे भगवान! आप कल्पवृक्षों में भी उत्तम कल्पवृक्ष हैं।** कल्पवृक्ष से भी उत्तम कल्पवृक्ष। ...होवे वह फल मिलता है।

हे भगवान! आपने ऐसे दान जगत को किये। इस प्रकार का शुभराग आवे और उस जाति का होना हो तो हो। यहाँ भी आत्मा कल्पवृक्ष समान है। भगवान का साक्षात् विरह हो, केवली की वाणी का विरह हो तो भी भगवान आत्मा अकेला ही कल्पवृक्ष समान है। अपने स्वभाव की सम्हाल करते हुए केवलज्ञान के काल में जो जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त करते हों, ऐसा भी भगवान! यह तुम्हारे हम अभी भरत में विरह पड़ा। समझ में आया? उन जुगलिया को कल्पवृक्ष का विरह था। हमें कल्पवृक्ष समान पूर्ण केवलज्ञानी परमात्मा का हमें भरतक्षेत्र में विरह पड़ा। परन्तु प्रभु! आपके विरह में भी ऐसा निश्चय कल्पवृक्ष हमारा आत्मा है। उससे हम काम लेते हैं। कहो, समझ में आया?

पिता मर जाए तो कहते हैं न कि बापू का काम यह करे। और पिता बैठा हो तो भी लड़के को कहते हैं। जा, जा तू जा न। मैं, वह तू है न - ऐसा कहते हैं। मैं, वह तू ही है न, तुझमें और मुझमें अन्तर कहाँ है? कुँवरजीभाई! ऐसा कहे किसी समय। वैसे तो स्वयं अपने आप जाए तो सन्तोष हो। नरभेरामभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी अब काम (नहीं आता)। ये सब लड़के उसे नहीं हुए? वे सब उसकी अपेक्षा चतुर और होशियार हों। परन्तु यह जहाँ मैं... मैं... मैं... होवे न। जहाँ-तहाँ मैंने किया, 'मैं करूँ... मैं करूँ यह अज्ञान है गाड़ी का भार ज्यों श्वान खींचे।' कुत्ता खींचे। मगनभाई! क्या होगा? कुत्ते जैसे ही हैं न, और क्या है दूसरा वहाँ? गजब बात, भाई! नेमीदासभाई!

यहाँ कहते हैं कि स्वयं किसी के काम कर सके और स्वयं जाए तो उसको ठीक

पड़े और लड़का जाए तो ठीक न पड़े, यह वस्तु की स्थिति में नहीं है। भ्रमणा ने घर किया है। मैं जाता हूँ तो उस मण्डप की शोभा बढ़ती है। बहुरू को अकेला भेजें, उसकी अपेक्षा अपन साथ में जाएं तो अधिक हो। अब व्यर्थ में पड़े न उसमें, यदि वहाँ सर्प-वर्प काटा और मरे वहाँ... अरे! अब इसकी अपेक्षा तो नहीं आये होते न। मर भी जाता है या नहीं? बहुत बार वहाँ जाए, वहाँ समाप्त हो जाए। अरे! परन्तु तेरा आत्मा कल्पवृक्ष समान यहाँ है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान का प्रयत्न कर। क्या करना? कितने ही और ऐसा कहते हैं, लो। महाराज! आप कहते हो परन्तु हमें करना क्या? परन्तु यह किसकी लगायी है यह?

यह कहा जाता है उसे (पहिचाने)। पृथक्-पृथक् तत्त्व राग, अजीव, आत्मा, गुण, पर्याय, द्रव्य जैसे-जैसे हैं, उनको पहले पहिचान, पहिचानकर और उस पहिचान द्वारा अन्तर सन्मुख में प्रयत्न का प्रयास कर। इसके लिये तो यह कहा जाता है। श्रद्धा तो कर पहले। पहले में पहली श्रद्धा कि वस्तु इस स्थिति से प्राप्त हो ऐसी है। राग से नहीं, निमित्त से नहीं, पर्याय के आश्रय से नहीं। वस्तु के आश्रय से प्राप्त हो, ऐसा यह आत्मा नहीं है। इस प्रकार की रुचि करे तो स्वभाव सन्मुख प्रयोग कर सके। ऐसा प्रथम श्रद्धा-ज्ञान में इसका वीर्य यह इसे पक्का निर्णय करना चाहिए। अकेला आत्मा पूरा पाड़ सके ऐसा है। कहो, समझ में आया? १३ गाथा (हुई)। कल्पवृक्ष लिखा है इसमें भी हरिभाई ने। दस लिखे हैं न? दस कल्पवृक्ष लिखे हैं, चित्रित किये हैं। यह उससे चित्रित कर न। बोलो।

हे भगवन! पृथ्वी को सनाथ करके पृथ्वी का उल्लास... लो! क्या कहते हैं? भगवान यहाँ आये न नीचे, तब कहते हैं यह वर्षा बरसती है न, वर्षा? तब अंकुर होते हैं न, अंकुर? पृथ्वी प्रसन्न हो गयी। कहते हैं कि ऐसे देखते हुए प्रभु! आप नीचे उतरे न, और यहाँ आये कि यह देखो न! यह पृथ्वी भी मानो अंकुर फूटे हों। नयी विवाहित स्त्री हो, नयी विवाहित स्त्री हो और उसका रोम-रोम जैसे प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार यह पृथ्वी भी प्रभु आपके नीचे उतरने से पृथ्वी भी प्रसन्न हो गयी। उसके अन्दर उसमें चारों ओर अंकुर जमे। यह बात करते हैं। बोलो।

गाथा १४

पहुणा तए सणाहा धरा सि तीए कहण्णहा बूढो।
णवघणसमयसमुल्लसियसासछम्मेण रोमंचो।।१४।।

अर्थ – हे जिनेश! हे प्रभो! आपने ही यह पृथ्वी सनाथ की है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो नवीन मेघ के समय होनेवाले श्वासोच्छ्वास के बहाने इसमें रोमांच कैसे हुए होते?

भावार्थ – जो स्त्री, विवाह की अत्यन्त अभिलाषिणी है, यदि उसका विवाह हो जाए, अर्थात् वह सनाथ हो जाए तो जिस प्रकार उसके शरीर में रोमांच उद्गत हो जाते हैं और उस रोमांच के उद्गम से उसकी सनाथता का अनुमान कर लिया जाता है। उसी प्रकार हे प्रभो! जिस समय आप इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे, उस समय पृथ्वी में रोमांच हुए; इसलिए उन रोमांचों से यह बात जान ली थी कि आपने इस पृथ्वी को सनाथ, अर्थात् नाथसहित किया।

गाथा - १४ पर प्रवचन

पहुणा तए सणाहा धरा सि तीए कहण्णहा बूढो।
णवघणसमयसमुल्लसियसासछम्मेण रोमंचो।।१४।।

हे जिनेश! हे प्रभो! आपने ही यह पृथ्वी सनाथ की है... ओहो! नहीं तो यह पृथ्वी अनाथ थी। परन्तु आप ऊपर से आये, (इसलिए) यह पृथ्वी सनाथ हुई, सनाथ हुई। आहाहा! समझ में आया? **क्योंकि यदि ऐसा न होता तो नवीन मेघ के समय होनेवाले श्वासोच्छ्वास के बहाने इसमें रोमांच कैसे हुए होते?** क्या कहते हैं। **जो स्त्री, विवाह की अत्यन्त अभिलाषिणी है, यदि उसका विवाह हो जाए,...** अर्थात् कि वह सनाथ बने **तो जिस प्रकार उसके शरीर में रोमांच उद्गत हो जाते हैं और उस रोमांच के उद्गम से उसकी सनाथता का अनुमान कर लिया जाता है।** कि यह स्त्री विवाहित लगती है, कुँवारी नहीं। उसके शरीर में भी उस प्रकार की पुष्टि आदि दिखायी देती है।

उसी प्रकार हे प्रभु! आप जब इस पृथ्वी पर अवतरित हुए, तब पृथ्वी में रोमांच हुआ, उस रोमांच द्वारा हमने यह बात जान ली है कि आपने इस पृथ्वी को सनाथ किया है। ऐसा सब हो गया न! पूरी वनस्पति पकी, इसलिए उसके द्वारा मानो यह तो सनाथ हो गयी। इसकी शरीर पुष्टि हो गयी, कहते हैं। आपके कारण यह सब पृथ्वी की शोभा है। कहो, समझ में आया? यह भगवान परमात्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ चैतन्य चमत्कार कल्पवृक्ष की जिसे अन्तर सन्मुख होकर दृष्टि-ज्ञान हुए, उसे जो भगवान की श्रद्धा का राग आया, उसमें इतना उल्लास उसे आ जाता है। कहो, समझ में आया?

भगवान की भक्ति में मुनि ऐसे उल्लास में आ गये हैं। हे प्रभु! ओहो! ऐसी चीज़ हमने जानी नहीं थी, ऐसी वाणी हमने सुनी नहीं थी, ऐसा ज्ञान हमने देखा नहीं था। ऐसी श्रद्धा के बीज कहाँ से उगे, यह हमें खबर नहीं थी। प्रभु! आपने अवतरित होकर ही यह सब किया। नेमिदासभाई! गजब बात की। इस पृथ्वी पर अवतरित हुए, तब पृथ्वी में रोमांच खड़ा हो गया। शरीर में रोमांच खड़ा हो गया। इसी प्रकार प्रभु! आपकी भक्ति में, आत्मा की भक्ति में असंख्य प्रदेश में आनन्द का प्रहलादरूपी रोमांच खड़ा हो गया। समझ में आया? प्रदेश पुष्टि हो गयी। फूले। असंख्य प्रदेशरूपी हमारी पृथ्वी। पृथ्वी है न स्वक्षेत्र वह। भाई! क्षेत्र कहो, पृथ्वी कहो। आता है या नहीं? पंचाध्यायी में आता है।

असंख्य प्रदेशरूपी हमारी पृथ्वी। प्रभु! आप जब अवतरित हुए, अर्थात् कि आपका भान हमें हुआ और हमारा आत्मा शुद्ध चिदानन्द है, ऐसा भान हुआ (तो) अब सनाथ हो गया। आत्मा सनाथ हुआ। सनाथ रक्षण करने को तैयार। राग और पुण्य और निमित्त की रुचि छूटकर आत्मा के असंख्य प्रदेश में श्रद्धा का भान हुआ। असंख्य प्रदेश में रोमांच (हो गया)। प्रहलाद-प्रहलाद आनन्द हुआ। इसलिए तुम अवतरित हुए, तब ऐसा हुआ, वह हमारे शुभभाव की भक्ति यह हम जन्मे तब हमें ऐसा जन्मे वह धर्म हो, तब नया अवतार गिना जाता है, सच्चा होगा यह? क्या कहा?

सम्यग्दृष्टि का जीवन अन्तर में अनादि काल से नहीं हुआ था, वह नया हुआ। और यों ही मुनि आवे तब नहीं कहते? अणगारे जाया। अणगार जब मुनि भावलिंगी सन्त हो, अणगारे जाया। नयी दशा चारित्र उदय हुआ। चारित्र का उदय हुआ। चारित्र

में अवतरित हुआ, जहाँ जन्म हुआ चारित्र का। आहाहा! धन्य... धन्य... धन्य... उस आनन्द के कुंज में, उस आनन्द के कुंज में, जैसे यह लोग बाग में घूमने नहीं जाते? बराबर ठीक से घूमकर ऐसे और वैसे। अमुक। मुम्बई में है न वह बड़ा बाग कौन सा ऊपर? क्या है? हैंगिंग गार्डन। सब अंग्रेजी शब्द। है न वह मलवारी टेकरी पर। हजारों लोग। हजारों लोग जल्दी उठते हैं। घण्टे-घण्टे-डेढ़ घण्टे ऊपर ऐसे ढ़ेरों (लोग) घूमते होते हैं और नीचे मुम्बई देखते हैं। ओहो! चारों लोग बहुत वृक्ष है। एक बार हम वहाँ गये थे। जल्दी उठकर (गये थे)। वहाँ सर्दी हो गयी। वहाँ कुछ घूमने का था नहीं। मलवारी टेकरी में उतरे। घूमने का कुछ मिलता नहीं। रामजीभाई कहे, यहाँ है। वहाँ तो सर्दी बहुत थी। उसमें लोग प्रसन्न-प्रसन्न (हो जाए)। परन्तु वह तो ढ़ेर सारे आते थे। महिलाएँ और आदमी। आहाहा! यह सब फूलझाड़।

अरे! प्रभु! तेरा आत्मबाग तो यहाँ है। समझ में आया? आत्माराम, आत्मा का आराम, यह अखण्डानन्द प्रभु। इसके आराम का बाग तो तेरा स्वरूप है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान होने पर असंख्य प्रदेश फल निकलते हैं। प्रभु! हम अवतरित हुए और आप अवतरित हुए, तब हमने इस पृथ्वी का सनाथपना देखा। हम अवतरित हुए, तब हमारा सनाथपना हमें (हुआ)। कितनी हुई? १५वीं।

गाथा १५

अब, ऋषभदेव भगवान के दीक्षा के काल को लक्ष्य में लेकर भक्ति का वर्णन करते हैं।

विज्जुव्व घणे रंगे दिट्ठपणट्ठा पणच्चिरी अमरी।
जइया तइयावि तए रायसिरी तारिसी दिट्ठा।।१५।।

अर्थ – हे वीतराग! जिस प्रकार मेघ में बिजली दीखकर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आपने जिस समय नृत्य करती हुई नीलांजना नाम की देवांगना को पहले देखकर, पीछे नष्ट हुई देखी, उसी समय आपने राज्य-लक्ष्मी को भी वैसा ही देखा, अर्थात् उसको भी आपने चंचल समझ लिया।

भावार्थ – किसी समय भगवान सिंहासन पर आनन्द से विराजमान थे और नीलांजना नाम की अप्सरा का नृत्य देख रहे थे, उसी समय अकस्मात् वह अप्सरा विलीन हो, पुनः प्रकट हुई। इस दृश्य को देखकर भगवान को शीघ्र ही इस बात का विचार हुआ कि जिस प्रकार यह अप्सरा विलीन होकर तत्काल में प्रकट हुई है; उसी प्रकार इस लक्ष्मी का भी स्वभाव है, अर्थात् यह भी चंचल है; अतः उसी प्रकार शीघ्र ही भगवान को वैराग्य हो गया। उसी अवस्था को ध्यान में रखकर ग्रन्थकार ने इस श्लोक में भगवान की स्तुति की है।

गाथा - १५ पर प्रवचन

विज्जुव्व घणे रंगे दिट्ठपणट्ठा पणच्चिरी अमरी।
जइया तइयावि तए रायसिरी तारिसी दिट्ठा।।१५।।

अब दीक्षा को लाये। वहाँ से लाये न? सर्वार्थसिद्धि से (वर्णन) करते... करते... करते..। अब भगवान एक बार ऐसे सिंहासन पर बैठे थे। और उनको दीक्षा का काल-प्रसंग आया। इन्द्रों ने आकर देवियों का उसमें (राज्यसभा में) देवियों का नृत्य उतारा। इन्द्रों ने देवियों का नृत्य (उतारा) उसमें एक देवी की ऐसी स्थिति थी कि उस काल में स्थिति पूर्ण होनेवाली थी।

हे वीतराग! जिस प्रकार मेघ में बिजली दिखकर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आपने जिस समय नृत्य करती हुई नीलांजना नाम की देवांगना को पहले देखकर, पीछे नष्ट हुई देखी, उसी समय आपने राज्य-लक्ष्मी को भी वैसा ही देखा... अर्थात् उसे भी आपने वैसी ही चंचल, क्षणभंगुर जान ली। यह एक दूसरा प्रसंग कहते हैं। मूल तो भगवान दृष्टि और तीन ज्ञान तो लेकर आये हैं परन्तु अभी अब उन्हें जातिस्मरण—मति (ज्ञान) का एक भेद निर्मल होने का प्रसंग है। उसमें भगवान सिंहासन पर बैठे थे। उसमें इन्द्र ने आकर देवियों का नृत्य (उतारा)। उसमें नीलांजनादेवी की आयुष्य की स्थिति इतनी थी। वह नाचती-नाचती नष्ट हो गयी। जैसे बादल में बिजली की चमकार आकर समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार वह नृत्य करती हुई नष्ट हो

गयी। इन्द्र ने उसके स्थान में दूसरी देवी को भेजा। भगवान के ख्याल में आया कि नहीं, वह देवी जो नाचती थी, वह समाप्त हो गयी। ओहो! यह तो एक विशेष वैराग्य का निमित्त है। उस नीलांजना के कारण से वैराग्य हुआ होता तो उसे देखनेवाले तो बहुत थे। लोग इस निमित्त का विवाद करते हैं न? धन्नालालजी! विवाद करते हैं। देखो! भगवान को नीलांजना को देखकर (वैराग्य आया)। नीलांजना को देखने तो लाखों-हजारों लोग बैठे थे। परन्तु भगवान का उपादान का काल ऐसा था... आहाहा! क्षणभंगुर! ऐसा देवी का नृत्य, उसके अंगोपांग, उसके वस्त्र, गहने, ऐसे नृत्य करती थी। स्थिति पूर्ण हो गयी तो देह छूट गयी। उसे तो कपूर की गोली। जैसे कपूर की गोली बिखर जाती है, वैसे देह बिखर गयी और आत्मा परलोक में चला गया। उसके बदले नृत्य में भंग न पड़े, इससे देव ने दूसरी देवांगना को वहाँ उपस्थित किया, परन्तु भगवान के ख्याल में आ गया। तीन ज्ञान के धनी हैं, विचक्षण हैं। ओहो! यह! यह राज और लक्ष्मी ऐसी! अब नहीं। अब... उस समय उनको जातिस्मरण होता है। अर्थात् भव की भान की विशेष शुद्धिदशा होती है और वैराग्य (आता है)। लोकान्तिक देव आते हैं। कहते हैं, प्रभु! आपको चारित्र का काल है। दीक्षा का काल है। यह बहाना लेकर (यहाँ) भगवान की भक्ति की है। कहो, समझ में आया?

एक समय भगवान सिंहासन पर आनन्द से विराजमान थे। अर्थात् ऐसा... **नीलांजना नाम की अप्सरा का नृत्य देख रहे थे, उसी समय अकस्मात् वह अप्सरा विलीन हो, पुनः प्रकट हुई।** अर्थात् **अप्सरा का नृत्य देख रहे थे, उसी समय अकस्मात् वह अप्सरा विलीन हो, पुनः प्रकट हुई। इस दृश्य को देखकर भगवान को शीघ्र ही इस बात का विचार हुआ कि जिस प्रकार यह अप्सरा विलीन...** ऐसा दिखाव तो भाई जगत में बहुत दिखते हैं। लो। बीस-बीस वर्ष के युवक अचानक कोई मोटर में, कोई किसी में, कोई विमान में। देखो न, ऐसा बहुत सुनायी देता है। पन्द्रह दिन में और महीने में कि विमान गिरा, बीस लोग मर गये, अमुक में यह हुआ। परन्तु भड का पुत्र ऐसा कठिन। क्योंकि ऐसा तो सुनते हैं न। ऐसा कहते हैं न? ऐसा तो बहुत वर्षों से सुनते हैं। आहाहा!

यहाँ जो उपादान की योग्यता थी। ऐसा देखा जहाँ... आहाहा! यह स्त्रियाँ। स्त्री

है न। भगवान को अभी राग था। पुत्र हैं भरत और बाहुबली जैसे तो जिनको पुत्र हैं। यह सब नाशवान। हमारी शरण हमारे में है। हमें भान है परन्तु हमें इतना वैराग्य नहीं था। इस निमित्त में लक्ष्य जाने से वैराग्य हो गया। अन्दर में से वैराग्य होकर यह विचार आया कि **जिस प्रकार यह अप्सरा विलीन होकर तत्काल में प्रकट हुई है; उसी प्रकार इस राज लक्ष्मी का भी स्वभाव है, अर्थात् यह भी चंचल है;...** यह भी चंचल है। कहो, बराबर होगा? स्वभाव भी ऐसा चंचल है। मेघ के बादल चढ़े। एक क्षण में बादल समाप्त होकर पानी गिर जाता है। क्या हुआ यह?

ऐसा आता है न भाई! किसी समय मेघ को देखकर भगवान को जातिस्मरण हुआ है। किसी को तारा खिरा। हनुमान का आता है न? हनुमान। हनुमानजी थे न (वे) बन्दर नहीं थे, हों! वे तो कामदेव थे। उनके राज्य में, कुल में, उनकी ध्वजा में बन्दर का चिह्न था। उनके कुल में वह वानरकुल कहलाता है। इसलिए उनका नाम ऐसा गोत्र का-कुल का था। वे तो कामदेव पुरुष थे। जिनका रूप तीन खण्ड में उनके जैसा छह खण्ड में नहीं है, ऐसा जिनका रूप था। वे हनुमान जब ऐसे बैठे हैं। है न अपने यहाँ चित्र है। ऊपर से एक तारा खिरता है। यह क्या है? यह क्या? यह तारा... प्रकाश का पुंज थोड़ी देर दिखकर नष्ट हो गया। ओहो! यह सब ऋद्धि निस्सार स्वप्नवत् है। अरे! हम इस प्रमाद में अभी तक भूले। हमें अन्तर की दृष्टि की खबर थी परन्तु इस वैराग्य की हमें जागृति नहीं थी। वह इस निमित्त से वैराग्य हो गया। केवलचन्दभाई! उसके कारण से हुआ न? वे निमित्तवाले विवाद उठाते हैं। देखो! इस कारण से उन्हें वैराग्य हुआ। अब यह देखते तो सब उनके पास बैठे हुए थे। यह क्या हुआ? क्या हुआ? ऐसा कहने लगे। यह क्या हुआ इन्हें? परन्तु तुझे क्या हुआ? हमें कुछ हुआ नहीं, हम तो देखते हैं।

अरे! भाई! यह उपादान आत्मा की जितनी अपनी तैयारी हो, तत्प्रमाण कार्य होता है, उसमें तब सामनेवाली चीज़ को निमित्त कहा जाता है। ऐसे निमित्त बहुत देखे परन्तु कहीं रोम खड़ा होता नहीं। अपितु भड का पुत्र पक्का होता जाता है। पक्का-पक्का। ऐसे कितने ही देखे हों। वृद्ध लोगों ने देखा होगा या नहीं? नरभेरामभाई! मनुष्य मर जाए, तब तो कितने देखते होंगे? कितने को जला आये हों, लो! यह जन्म-मरण हुआ ही करते हैं। अपने क्या, यह तो हुआ करते हैं।

यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि भगवान ने देखा, इसलिए वैराग्य हुआ, ऐसा नहीं है। स्वयं को वैराग्य की जागृति (आती है)। आहाहा! अरे! यह स्थिति! नीलांजना जैसी देवी का आयुष्य वह क्षणभंगुर! शरीर क्षणभंगुर, राज्य क्षणभंगुर, कीर्ति क्षणभंगुर, खम्मा-खम्मा करनेवाले राजा सब क्षणभंगुर। हम तो वीतरागदशा प्रगट करने को अवतरित हुए हैं। देखो! यह स्वयं स्मरण करते हैं। मुनि भी इस प्रकार भक्ति करते हैं कि हम वैराग्य में आगे बढ़कर हमें स्थिरता पूर्ण हो, ऐसी ही हम भावना भाते हैं। कहो, समझ में आया?

अत: उसी समय शीघ्र ही भगवान को वैराग्य हो गया। उसी अवस्था को ध्यान में रखकर ग्रन्थकार ने इस श्लोक में भगवान की स्तुति की है। क्या प्रभु आपके वैराग्य की दशा! शान्तिनाथ भगवान तीन ज्ञान के धनी, तीन ज्ञान तो लेकर आये हैं। दीक्षा के समय जाते हैं, वैराग्य होता है। उन्हें तो ९६ हजार स्त्रियाँ हैं, ९६ हजार स्त्रियाँ पद्मनी जैसी। फिर कहते हैं कि स्त्रियों! हम तुम्हारे नहीं हैं, तुम हमारी नहीं हो। हम चारित्र अंगीकार करेंगे। (स्त्रियाँ) चोटी खींचती है और स्त्रियाँ सिर फोड़ती हैं। अरे! स्त्रियों! तुमको ऐसा लगता हो कि अभी तक तुम्हारे राग और तुम्हारी चेष्टाओं से यदि हम रहे हों, ऐसा तुम्हें लगता हो तो यह बात छोड़ देना। हमें राग था, तब तक हम अटके थे। तुम्हारी प्रीति और तुम्हारी चेष्टायें और तुम्हारे हावभाव और तुम्हारी उस प्रकार की अनुकूलता के कारण हम अटके थे, यह बात भूल जाना। भूल जाओ। हमें राग था, इसलिए अटके थे। वह हमारा राग छूट गया। तुम्हारे कारण अब वह राग खड़ा हो, यह अब है नहीं। हम वनवास जाएंगे। आत्मा के स्वरूप का साधन करेंगे। हम इस भव में मुक्ति होने के लिये अवतरित हुए हैं। उस मुक्ति की प्राप्ति अब हम अल्प काल में ही करनेवाले हैं। छूट जाओ, हमारा कोई नहीं है। हमने किसी को दिया नहीं, हमने किसी को रानीरूप से बुलाया हो तो वह राग था, इसलिए। हमारे रानी नहीं होती। हमारे पुत्र नहीं होता, हमारे पुत्रियाँ नहीं होती। हमारे समधी-बमधी नहीं होते। शरीर ही हमारा नहीं। हमें भान था परन्तु हमें वैराग्य नहीं था।

...वैराग्य यदि इतना होवे, तब तो संसार में रहे नहीं। और वे रहे हैं, वह कहीं बाहर के संयोग के कारण से रहे नहीं। अपना प्रमाद और राग (उसके कारण से रहे

हैं।) यहाँ भी जो कुछ कहते हैं। दोष निकालते हैं क्या करे ? भाई! इस लड़के को सब उठाना आता नहीं। लेना आता नहीं, कुछ करना आता नहीं; इसलिए हमें रुकना पड़ता है। यह तो सामान्य साधारण बात है, हों! केवलचन्दभाई! इसे बराबर आता नहीं; इसलिए हमें रुकना पड़ता है। नहीं तो हमें बहुत वैराग्य होता है, बहुत छूटने का विकल्प आता है। परन्तु यह एक जोड़ते हैं, वहाँ तेरह टूटते हैं। तेरह टूटते हैं। संधते हैं अर्थात् उस ममता का सांधा सधता है। उसमें कहीं टूटने का अवसर नहीं है। परन्तु तेरे कारण से या उसके कारण से ? कैसे होगा ? भगवानजीभाई! उसका भी निर्णय न करे और पर और ऐसे निमित्त हमें मिल जाते हैं न, हम ऐसा करेंगे। हमको भाई! ऐसे निमित्त मिलें तो हम कहाँ वैराग्य मुनि करना चाहते ? सुन न अब! निमित्त से वैराग्य होता होगा या तुझसे ?

यहाँ आचार्य महाराज इस बात का प्रसंग लक्ष्य में लेकर और भगवान की स्तुति (करते हैं)। प्रभु! आप तो वैराग्य को पा गये। इसी प्रकार अक्षय ऐसे निमित्त हों तो हमको भी अन्दर वैराग्य होता है, ऐसी अपनी जागृति बताता है। श्रीमद् में कहते हैं या नहीं ? चाहे जैसे तुच्छ विषयों में भी... आता है न ? 'उज्ज्वल आत्मा का स्वत: वेग वैराग्य में साहस से कूद पड़ना, वह है।' वह स्वयं के कारण से। चाहे जैसे तुच्छ विषय हों क्षणभंगुर। दाँत निकाले, कोई अमुक करे। आहाहा! यह क्या है ? अरे! यह आत्मा कहाँ है, इसकी उसे खबर नहीं। यह क्या खिल-खिलाकर हंसे और यह क्या करता है ? यह मर गया। यह देह छूटी, इसका यह हुआ। 'चाहे जैसे तुच्छ विषय में उज्ज्वल आत्माओं का स्वत: वेग' स्वत: वेग स्वयं के कारण। 'वैराग्य में साहस से कूद पड़ना वह है।' इसी प्रकार भगवान आत्मा की उज्ज्वलता के कारण यह प्रसंग देखकर वैराग्य हो गया। वह स्वयं के कारण से वैराग्य हुआ। पर के कारण से हुआ नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)